International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management
ISSN: 3108-1754 (Online)
Volume 01 Issue 03 December-2025 | Impact Factor: 3.5



धर्म- एक परिचयात्मक विश्लेषण, उद्गम एवं विकास सहित !

डॉ.राधेश्याम शर्मा (Principal) विभाग- राजनीतिक विज्ञान

बानसूर पी.जी. कॉलेज बानसूर (अलवर) राज.301402

How to Cite this Article:

Sharma, R. (2025). धर्म- एक परिचयात्मक विश्लेषण, उद्गम एवं विकास सहित !. International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management, 01(03), 1-9. https://doi.org/10.55041/ijcope.v1i3.007

License:

This article is published under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author(s) and the source are credited.

© The Author(s). Published by International Journal of Creative and Open Research in Engineering and Management.





https://doi.org/10.55041/ijcope.v1i3.007

प्रस्तावना:-

मनुष्य प्राचीन काल से ही कुछ महत्वपूर्ण अलौकिक सत्ताओं अथवा अति प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास करता रहा है, जिसके फलस्वरूप उस प्रचलित अर्थ में धर्म का जन्म हुआ है, जिस अर्थ में आज सामान्यतः इस शब्द को ग्रहण किया जाता हैI इस कारण से ही मनुष्य जाति के विकास के प्रारंभिक काल से ही धर्म ने मनुष्य के जीवन में बहुत व्यापक तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है I विश्व की विभिन्न मानवीय सभ्यताओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि धर्म का मानव जीवन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों में मनुष्य के अधिकार, कर्म एवं विचार कुछ विशेष धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों द्वारा निर्धारित एवं शासित होते रहे हैं I लेख में हम धर्म का परिचय, उद्गम एवं विकास सहित विश्लेषण करेंगे।

धर्म का परिचय :-

मानव जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी महत्वपूर्ण भाग किसी न किसी रूप में धर्म द्वारा अवश्य प्रभावित हुए हैं I इस संबंध में विवाद हो सकता है कि धर्म का यह प्रभाव मानव जीवन के लिए वांछनीय एवं कल्याणकारी रहा है या नहीं, किंतु एक तथ्य के रूप में मनुष्य के जीवन पर धर्म के इस व्यापक प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता I धर्म मनुष्य जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली वह व्यापक अभिवृत्ति है जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र, सर्वज्ञ, तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपास्य विषय के प्रति अखंड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और जो मनुष्य के दैनिक आचरण तथा प्रार्थना, पूजा पाठ, जप-तप आदि बाह्य कर्मकांडो में अभिव्याप्त होती है I

भारतीय वाड्मय में "धर्म" शब्द का प्रयोग इसके प्रचलित सामान्य अर्थ से भिन्न और बहुत व्यापक अर्थ में किया गया है I ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में धर्म शब्द धार्मिक विधियों या धार्मिक क्रिया संस्कारों में प्रयुक्त हुआ है I[1] अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग " धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में हुआ है" I[2] ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्तव्यों के अर्थ में हुआ है I[3] ऋग्वेद में धर्म को विश्व का मूल तत्व या आधार माना गया है तो उपनिषद में धर्म को सत्य और कर्तव्य से जोड़कर उसे नैतिकता के साथ संबंध कर दिया गया I

शांतनु पुत्र भीष्म पितामह ने धर्म की व्याख्या करते हुए बताया है कि ' धर्म' शब्द " धृ" धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना I अभ्युदय, उत्पीड़न और धारण अर्थात संरक्षण जिस उपाय से हो वही धर्म है I धर्म के कारण ही व्यक्ति अपने स्थान अथवा पद में बने रहते हैं, जो जगत की स्थिति का कारण हो और प्राणियों की प्रत्यक्ष उन्नति और मोक्ष प्राप्ति का हेतु बने, वही धर्म है I[4] धर्म मर्यादा का बंधन है जिसके भीतर होकर समाज की धारा बहती है समाज को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए इस धर्म बंधन की तथा मर्यादा की आवश्यकता है I



बौद्ध दर्शन में भी शील और अष्टांगिक मार्ग को धर्म के अंतर्गत मानकर उसके नैतिक पक्ष को विशेष महत्व दिया गया है, इस प्रकार भारतीय विचारकों ने धर्म शब्द का वह अर्थ स्वीकार नहीं किया जो आज सामान्यतः प्रचलित है I उन्होंने धर्म को ऐसी जीवन पद्धति के रूप में ग्रहण किया है जिसके अनुसार मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है और स्व- कर्तव्य पालन के सूत्र ग्रहण करता है I कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तथा मनु ने मनुस्मृति में धर्म के स्व-कर्तव्य पालन संबंधी इसी अर्थ को विशेष महत्व दिया है I

पाश्चात्य दर्शन में धर्म का पर्याय रिलीजन एकता और सामंजस्य का सिद्धांत है (लैटिन शब्द रिपीओ ओनिस री- वापस अथवा पुन: मिजेअर बाधग) रि से यह बोध होता है कि एकता के क्षेत्र विषय मूल रूप से एक ही थे और केवल अस्थाई रूप से पृथक हो गए हैं I इस प्रकार धर्म मानव और ईश्वर की परम एकता में आस्था पर आधारित है I हेगेलवादियो ने धर्म की व्याख्या करते हुए उसमें बुद्धि के अंश पर जोड़ दिया है I जैसा कि प्रोफेसर मक्टेगार्ट ने कहा है " धर्म स्पष्टतया ही एक मानसिक अवस्था है | मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी हममें और विस्तृत विश्व में एक सामंजस्य की आस्था पर आधारित एक भावना के रूप में सर्वोत्तम रीति से वर्णन किया जा सकता है I"[5]

नीतिवादी धर्म के नैतिक पक्ष पर जोर देते हैं I मैथ्यू आर्नल्ड धर्म की "भावना में नैतिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं" के रूप में व्याख्या करता है I कान्ट नैतिक संकल्प की प्राथमिकता पर बल देता है और ईश्वर को केवल नैतिक मान्यता के रूप में लाता है I ब्रेडले कहता है कि "नैतिकता एक अधिक ऊंचे शुभ के स्तर पर पहुंचती है, वह वहां समाप्त होती है जिसको हम धर्म कहते हैं I "[6] विलियम जेम्स ने भी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है "व्यक्तियों को अपने एकांत की अनुभूतियां, कर्म और अनुभव जहां तक कि वे अपने को उस सत्ता से संबंधित पाते हैं, जिसको कि वे दैवी कहते हैं I "[7] एकांकी और एकांकी उड़ान के रूप में धर्म की परिभाषा उन रहस्यवादियों के वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो कि व्यक्तिगत मोक्ष पर बल देते हैं I

जार्ज स्पेलमैन के अनुसार धर्म के विभिन्न अर्थ हैं I जैसे सद्गुण, सही कार्य, प्रकृति का नियम औचित्य के प्रति अनुरूपता, सर्वमान्य सत्य, परंपराओं एवं रीति-रिवाजों का नियम संग्रह, औचित्यपन, अंतरात्मा, अपरिवर्तनीय व्यवस्था,कानून तथा इन सभी की विभिन्नताए "धर्म" शब्द चाहे जीवन के किसी भी व्यवहार के संबंध में प्रयोग किया जाए,उसका संबंध मौलिक रूप से नैतिक मानदंडों में रहता है I नैतिक मानदंडों के आधार पर जांच करने के बाद ही इन क्षेत्रों में व्यक्ति के कार्यों को धार्मिक या अधार्मिक होना तय किया जाता है I[8] ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में धर्म का अर्थ बतलाया गया है कि व्यक्ति की ऐसी उच्चतर अदृश्य शक्ति पर विश्वास करें, जो उसके भविष्य पर नियंत्रण करती है और जो उसकी आज्ञाकारीशीलता,सम्मान तथा आराधना का विषय है I[9] अलौकिक शक्ति के अस्तित्व में विश्वास जो धर्म का मूल आधार है, को विभिन्न चिंतन परंपराओं में बहुविज्ञ व्याख्यायित किया गया है I ग्रीक विचारधारा में इसी गतिशील बनाने वाली अविचलित शक्ति,ग्रीस तथा रोम कालीन देवता तथा अर्द्धदेवत्व पूर्ण नायको, ईसाई धर्म के व्यक्तिगत तथा स्नेहकर्ता ईश्वर,मुस्लिम धर्म के दयावान अल्लाह आदि विभिन्न रूपों को स्वीकृत किया गया है I अनेक विद्वान देशभक्ति को धर्म बतलाते हैं I आधुनिक काल में अगस्त कांट ने धर्म को वैज्ञानिक रूप प्रदान करते हुए उसे मानवीय धर्म की संज्ञा दी है I

विश्व के सभी प्राचीन एवं आधुनिक धर्मों का अध्ययन और उनके सामान्य तत्वों का सार देखने का प्रयत्न किसी न किसी परिभाषा पर पहुंचा है I धर्म किसी अदृश्य आध्यात्मिक व्यवस्था से हमारे व्यवहारिक संबंध की चेतना है I धर्म उस शक्ति में आस्था है जो हममें तो नहीं, किंतु औचित्य निर्धारण करती है तथा धर्म उस शक्ति से सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने की इच्छा है I ईश्वर प्रेम ही धर्म है वह परमात्मा से हमारा संसर्ग है I यह हमारे अंतर में जो सर्वश्रेष्ठ है उसके प्रति निष्ठा है I

ईमसर्न ने कहा है कि "मैं अपूर्ण हूं, अपने में पूर्णता की आराधना करता हूं I[10] श्री अरविंद के शब्दों में सारांश यह है कि धर्म का सर्वाधिक तत्व ईश्वर की सिद्धि है उसकी आकांक्षा है असीम, निरपेक्ष, एक भागवत सत्ता की खोज जो इन सभी वस्तुओं में है और फिर भी अमूर्त न होकर सत्पुरुष है I उसका कार्य है मानव और ईश्वर में सच्चे और परम संबंधों का जीवन व्यतीत करना I "[11] इस तरह धर्म उच्चतर मूल्यों की गहरी, सहज प्रवृतयात्मक भावनाओं पर आधारित है I यह अंतर कि वह दिव्यता है जो ईश्वरीय दिव्यता तक पहुंचती है I यह बहुत ऊंचे जाकर चरम मूल्यों की ओर देखता है और उनकी और सहानुभूति तथा मान्यता के साथ आकृष्ट होता है I वंडर ने कहा है कि " जो विचार और भावनाएं आदर्श अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं वे धार्मिक हैं I" इसलिए धर्म में नाम, प्रतीक और व्यक्ति पवित्र तथा शुद्ध है क्योंकि वे सामान्य वस्तुओं से परे जाने वाले सर्वोत्तम मूल्य हैं I अतः धार्मिक अभिवृत्ति, निष्ठा, आत्मोत्सर्ग,समादर तथा विनय की अभिवृत्ति है I[12] इस प्रकार धर्म वह सर्वांगपूर्ण अभिवृत्ति है जो किसी समाज समाहत विषय के प्रति आत्मसमर्पण एवं अंतरबध्यता हेतु व्यक्ति को संपूर्ण जगत के प्रति अभिमुख करती है I सामान्य रूप से शाश्वत, अतिप्राकृतिक सताओं, शाश्वत जीवन



और शाश्वत मूल्य में विश्वास, नैतिक व्यवस्था का भौतिक व्यवस्था के ऊपर अधिपत्य मानना तथा उसके अनुसार आचार व्यवहार ही धर्म है I

<u>धर्म का उद्गम एवं विकास</u> :-

धर्म के मूल स्रोत और उसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया को जानने के लिए उन परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिनमें आदिकालीन मानव अपना जीवन व्यतीत कर रहा था I मानव जीवन का आदिकाल जिसे विद्वानों ने " पाषाण- युग" की संज्ञा दी है, वह काल था जब मनुष्य को प्राकृतिक नियमों का कोई ज्ञान नहीं था और इसी कारण वह पूर्ण रूप से प्राकृतिक शक्तियों पर आश्रित थाI अपनी सभी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे केवल प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता था जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं थाI तब अन्य पशुओं की भांति मनुष्य भी वनों में इधर-उधर भटकता फिरता था और केवल आखेट द्वारा ही वह भोजन संबंधी अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता था I आखेट न मिलने पर उसे भूखा ही रह जाना पड़ता था I इसी प्रकार घनघोर वर्षा, प्रचंड गर्मी तथा शीत से बचने के लिए तब उसके पास प्राकृतिक गुफाओं के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था I अनिश्चय तथा असुरक्षा के इस वातावरण में जब मनुष्य को भूख, रोग, बाढ़, तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोप का सामना करना पड़ता था तब वह स्वभावत: अत्यधिक भयभीत हो उठता था I प्राकृतिक नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ होने के कारण तब वह अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकता था I शारीरिक दृष्टि से भी वह अनेक अन्य पशुओं की तुलना में बहुत दुर्बल था जो उसे निरंतर भयत्रस्त किये रहते थे I उन हिंसक पशुओं के आकस्मिक आक्रमण की आशंका के कारण उसका जीवन सदा संकट पूर्ण बना रहता था I इसके अतिरिक्त आदिम युग में मानव समाज बहुत ही छोटी-छोटी जनजातियों में विभाजित था जिनमें सतत हिंसा पूर्ण संघर्ष चलता रहता था I उपरोक्त आदिकालीन मनुष्य की जिन कठिन एवं दुखद परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है उन्हीं में धर्म की उत्पत्ति तथा उसके विकास के मूल कारणों या स्रोतों को खोजा जा सकता है I यह अनुभव सिद्ध तथ्य है कि जब मनुष्य किसी ऐसे दुख से पीड़ित होता है जिसका वह स्वयं निराकरण नहीं कर पाता तो वह अत्यधिक भय त्रस्त हो उठता है और अपने आप को बहुत दुर्बल तथा असहाय समझने लगता हैI ऐसी स्थिति में अपने दुख से मुक्ति प्राप्त करने के लिए वह स्वभावत: किसी ऐसी शक्ति से सहायता की याचना करने लगता है जिसे वह अपनी अपेक्षा कहीं अधिक बलवान समझता है I मनुष्य की यही परावलंबन संबंधित मनोवृति धर्म के उद्गम और विकास का मूल कारण है I अपने विकास के आदिकाल में जब मानव प्रकृति के नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ था तब भूख, रोग, आंधी तूफान, बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिक विपत्तियों से ग्रस्त होने पर वह स्वभावत: अत्यधिक भयभीत हो उठता था और उनसे मुक्त होने के लिए ऐसी शक्तियों का सहारा लेता था जिन्हें वह साधारण तथा अलौकिक मानता थाI इन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करता था जिनमें मानव बलि भी शामिल था I उस युग में भोजन, सुरक्षा आदि अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य द्वारा की गई अलौकिक शक्तियों की उपासना या प्रार्थना ही धर्म का मूल स्रोत है और यह उपासना ही धर्म का अनिवार्य आधारभूत तत्व है I जिसके अभाव में उसके अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती I अपने विकास के शैशव काल में मनुष्य भय या दुख से मुक्ति और अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अलौकिक शक्तियों से जो प्रार्थना करता था उसे ही धर्म का आदि रूप माना जा सकता है I धर्म के उद्भव में इसका उल्लेख करते हुए जॉर्ज गैलोब कहते हैं की" भावना विशेषत: भय को प्राय: एक ऐसी प्रेरक शक्ति माना जाता है, जो मानव को धर्म की ओर उन्मुख करती है, वह धर्म जिसे आने वाली विपत्तियों के विरुद्ध कवच समझा जाता हैI भय ने ही मनुष्य को धार्मिक अनुष्ठानों के लिए प्रेरित किया I भय त्रस्त होकर वे स्वभावत: सहायता के लिए देवताओं की ओर उन्मुख हुए I निम्न स्तरीय संस्कृति में अब भी आत्माओं या मृत व्यक्तियों के भूतों का भय व्याप्त है और वन में रहने वाले मनुष्य आज भी अंधेरे से बाहर निकलने से डरता है I[13]

भय के अतिरिक्त मनुष्य की कुछ अन्य भावनाओं या अभिवृतियों ने भी धर्म के उद्गम में सहायता दी है I यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य भयभीत तभी होता है जब उसे अपने किसी प्रिय या मूल्यवान वस्तु के छीने जाने या नष्ट हो जाने की आशंका होती हैI आदिकाल से ही मनुष्य अपने जीवन तथा कुछ अन्य वस्तुओं को मूल्यवान मानकर उनकी रक्षा का प्रयास करता है I इन मूल्यवान वस्तुओं की रक्षा तथा वृद्धि की कामना उसके जीवन में सदा ही बनी रहती है और उस कामना ने भी उसे अलौकिक शक्तियों की पूजा करने के लिए प्रेरित किया है I आज भी प्रार्थना तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में जीवन और भौतिक समृद्धि के प्रति अनुराग की यह मानवीय कामना स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है कि अब भी मनुष्य ईश्वर से अपने सुख, समृद्धि, धन, संपत्ति, संतान आदि की याचना करता है I इस प्रकार आदिकाल से ही भय के साथ-साथ जीवन जीने तथा सुख प्राप्त करने की इच्छा ने भी मानव को धर्म की ओर उन्मुख किया है



I वस्तुतः इस जिजीविषा से प्रेरित होकर ही मनुष्य उन् अलौकिक शक्तियों पर आश्रित रहने लगा जिनसे वह यह आशा करता है कि वे उसकी इस इच्छा की पूर्ति करेंगे I इसी कारण अपने जीवन की सुरक्षा तथा सुख समृद्धि के लिए अलौकिक शक्तियों पर पूर्णतः आश्रित रहने की इस मानवीय प्रवृत्ति को भी कुछ विद्वानों ने धर्म का मूल स्रोत माना है I[14] आज भी अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में मनुष्य की यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है अब भी कई व्यक्ति अपने जीवन को सुरक्षित रखने तथा सुख समृद्धि प्राप्त करने के लिए अपने आपको ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक शक्ति पर पूर्ण आश्रित मानते हैं I

ईश्वर पर आश्रित रहने की मानवीय प्रवृत्ति ने ही मनुष्य के मन में अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व से संबंधित उस आस्था या विश्वास को जन्म दिया है जो धर्म के लिए अनिवार्य है I किसी अलौकिक शक्ति के अस्तित्व में विश्वास धर्म का मूल आधार है I आदिकालीन मानव को जिन प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उन्होंने उसके इस विश्वास को और अधिक दृढ़ किया तथा निरंतर बनाए रखा है I वस्तुतः अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व में मनुष्य का यह विश्वास ही प्रार्थना, पूजा, आदि धार्मिक अनुष्ठानों को सार्थक एवं संभव बनाता है I आदिमानव की संवेगात्मक तीव्रता और बौद्धिक परिपक्वता ने उसके इस विश्वास में विशेष रूप से वृद्धि की है I अपने विकास के शैशव काल में मनुष्य के जीवन में संवेगों अथवा भावनाओं का अत्यधिक महत्व था वह अपने सभी कार्य तथा निर्णय भावनाओं से प्रेरित होकर करता था I इसके अतिरिक्त तब तक मनुष्य के विचार एवं तर्क करने की शक्ति का विकास भी अपेक्षाकृत बहुत कम था I इन सभी कारणों के फलस्वरुप वह बहुत सरलता पूर्वक और शीघ्र ही असंगत एवं तर्कहीन बातों पर भी विश्वास कर लेता था I तर्क रहित तथा असंगत आदिम धार्मिक विश्वासों के मूल में मनुष्य की यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है I मनुष्य की उस प्रवृत्ति ने धर्म के उद्भव एवं विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है I आज भी यह प्रवृत्ति मनुष्य में पर्याप्त सीमा तक विद्यमान है और धर्म को बनाए रखने में सहायक रही है I

निष्कर्ष :-

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आदिकालीन मनुष्य की दुर्बलता एवं असमर्थता से उत्पन्न भय, प्राकृतिक नियमों के विषय में उसकी अनभिज्ञता , अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करने में उसकी असमर्थता, जीवित रहने तथा सुख प्राप्त करने की उसकी बलवती इच्छा, संवेगात्मक तीव्रता एवं बौद्धिक परिपक्वता आदि के फलस्वरुप उत्पन्न अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व में उसका विश्वास और उन पर पूर्णत: आश्रित रहने की उसकी मनोवृति आदि में धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के कारण हैं I

हीगल तथा जेम्सफेजर के अनुसार धर्म का प्रारंभ जादू टोने से हुआ I एक समय ऐसा था जब मनुष्य की धारणा थी कि प्रकृति की क्रियाओं पर जादू टोने के द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है I किंतु कालांतर में जब यह विधि सफल नहीं हुई तो लोगों ने अति मानवीय शक्तियों तथा देवों को प्रसन्न करने का प्रयास किया I इस प्रयास के कारण उन्हें पुरोहितों की मदद लेनी पड़ी और इस तरह जादूगर के स्थान पर पुरोहित का महत्व बढ़ने लगा और जादू टोने की जगह यज्ञ तथा प्रार्थना की विधि महत्वपूर्ण मानी जाने लगी, जो धर्म का आधार बनी I[15] हर्बट स्पेंसर के अनुसार धर्म का प्रारंभ भूतों के भय के कारण हुआ I उसके अनुसार वर्ग का जब कोई तेजस्वी पुरुष मर जाता था तो उस मृतक की आत्मा की पूजा की जाती थी I इस पूजा के पीछे एक भय की भावना थी और आदर की इच्छा भी I वह व्यक्ति अपने जीवन काल में महत्वपूर्ण माना जाता था I मृत पुरुष की इस प्रकार की प्रार्थना तथा पूजा से देवताओं की उत्पत्ति हुई I

डेविड ह्यूम ने अपनी पुस्तक " नेचुरल हिस्ट्री ऑफ रिलीजन" में बताया कि प्राकृतिक शक्तियों के डर से लोगों ने अलौकिक शक्ति के अस्तित्व की कल्पना की थी I तथा उनकी पूजा तथा आराधना शुरू की I मैक्स मूलर के मतानुसार "धर्म का प्रारंभ इस बात में निहित है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को मानव ने अपने जैसा ही जीवधारी स्वीकार किया" I[16] जब बाढ़ आदिवासियों का घर उजाड़ देती थी या तूफान उनका छप्पर उड़ा ले जाता था, या सूर्य उसे गर्मी से त्रस्त कर डालता था, या जब हरे भरे वृक्ष की शीतल छाया शांति प्रदान करती थी तो उसे लगता था कि यह सब चीजें निर्जीव नहीं है I इन सब में प्राण है I इसीलिए इनकी पूजा-अर्चना से सुख शांति प्राप्त की जा सकती है एमिल दुर्खीम के मतानुसार धर्म का प्रारंभ कर्मकांडीय क्रियाओं के कारण हुआ I[17] कार्ल मार्क्स ने धर्म को एक सामाजिक वृत्ति माना I



<u>संदर्भ ग्रंथ सूची</u>:-

1. ऋग्वेद, 1, 22, 18, 5, 26, 6,7-43,24,9,64,1,9,9,17
2. अथर्ववेद, 9,9, 17
3. महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 109, श्लोक 10-12
4. श्रीमदभगवत गीता, अध्याय 18, श्लोक 5
5. मक्टेगार्ट, सम डॉग्माज ऑफ रिलीजन, पृष्ठ 2
6. ब्रेडले, ऐफ. एच., एपीयरेंस हैंड रियलिटी, पृष्ठ 388
7. प्लोटिंस, द नियोप्लोटोनिस्ट, पृष्ठ 103
8. जॉन वी. स्पेलमैन, पोजिटिकल थ्योरी ऑफ़ एंसियंट इंडिया, पृष्ठ 98
9. सेमनल, एम. थॉमसन, ए मॉडर्न फिलोसाफी ऑफ़ रिलीजन उद्घृत , जोर्ज टामस ह्राइट पैट्रिक- दर्शनशास्त्र का परिचय पृष्ठ 37
10. श्री अरविंद, ह्यूमन साइकिल, न्यूयॉर्क, 1950, पृष्ठ 160
11. जेम्स बी. प्रेट , दि रिलीजस कॉन्शसनेस, अध्याय 1
12. जॉर्ज गेलोव, दि फिलोसाफी ऑफ रिलीजन, चलूर्स स्क्रीबर्नर संस,19222, पृष्ठ 75
13. वेद प्रकाश वर्मा, धर्म दर्शन की मूल समस्याएं हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, से उधग्रत पृष्ठ 38
14. ई. ओ. जेम्स, हिस्ट्री ऑफ रिलीजन, चलूर्स स्क्रीबर्नर संस,पृष्ठ 5
15. एफ. मैक्स मूलर, लेक्चर ऑन द ओरिजन एंड ग्रोथ ऑफ रिलीजन, पृष्ठ 39
16. प्रीट्रिम सोरोकिन-कंटेंपरेरी सोशियोलॉजी थ्योरीज पृष्ठ 474
17. कार्ल बार्थ-दि डाक्ट्रिन ऑफ़ दि वर्ड ऑफ गॉड पृष्ठ 14